

मध्यकालीन नाटकों पर आधारित जाति व्यवस्था : एक अध्ययन (बारहवीं एवं तेरहवीं शताब्दी)

सुरेन्द्र सिंह

शोधार्थी, इतिहास विभाग, मदवि, रोहतक, हरियाणा, भारत।

सारांश

जाति प्रथा पर साहित्य की कोई कमी नहीं है लेकिन इस पर बहुत कम काम हुआ है। जाति न केवल सिद्धान्त में उसके स्वरूप और कार्य प्रणाली पर बल्कि हर रोजमर्रे की जिन्दगी की भी हकीकत है। जाति न केवल सिर्फ धर्म है और न ही ये अकेले हिन्दुमत से ही सम्बन्धित है। यदि जाति उपाधिकारों के बारे में बात करें तो इसके नियमों को उच्च अधिकार वर्ग ने उपर से नीचे गिरा दिया। इसलिए कहा जा सकता है कि जितनी जाति प्रत्यक्षीकरण और कार्य के बारे में है उतना ही जाति विचारधारा और मूल्यों से भी जुड़ी है। ये सब एक दूसरे से जुड़े हैं। इसके अतिरिक्त जाति से सम्बन्धित वाद-विवाद, विरोध, तनातनी भी होती रहती है जाति समय और इतिहास का मुद्दा भी है। जाति-प्रथा की कार्यप्रणाली को हम नाटकों में वर्णित सामग्री के आधार पर देखेंगे।

मुख्य शब्द : जाति प्रथा, सिद्धान्त, कार्यप्रणाली, वर्णव्यवस्था, समाज।

प्रस्तावना

अलबेरूनी के अनुसार भारतीय समाज चार वर्णों में बंटा हुआ था। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र।¹ वर्णव्यवस्था भारतीय समाज की मुख्य संस्था थी। प्राचीन भारत में इस संस्था का विकास हो चुका था। प्राचीन भारत में कार्य की सुविधा की दृष्टि से मानव की जन्मजात विशेषताओं के आधार पर वर्णव्यवस्था की स्थापना की थी।² यद्यपि बौद्ध और जैनमत ने इस संस्था का विरोध कर इसे क्षति पहुंचाने का कार्य किया लेकिन यह व्यवस्था नष्ट नहीं की जा सकी और हिन्दु मत के पुनरभ्युदय के साथ-साथ यानी कि गुप्त काल में जब गुप्त शासकों ने हिन्दुत्व को संरक्षण प्रदान किया तब इस संस्था की भी फिर से उन्नति हुई। गुप्त काल के बाद भारत के सामाजिक संगठन के स्वरूप में परिवर्तन होने लगा और मध्यकाल के शासन तक बहुत कुछ परिवर्तन हो गया। वंश परम्परा के अनुसार मानव का व्यवसाय स्थिर होने लगा। भौगोलिक स्थिति, खान-पान, धार्मिक विश्वास, विवाह-संस्कार आदि में भिन्नता के आधार पर एक वर्ण के भीतर अनेक वर्ण बनने लगे।³ इन वर्णों की जानकारी हम 12वीं एवं 13वीं शताब्दी में लिखे गये नाटकों के आधार पर इनमें आए परिवर्तनों को देखने का प्रयास करेंगे। प्राचीन काल से ही ब्राह्मणों का स्थान सर्वोच्च था। विचाराधीन नाट्य साहित्य के अनुसार समाज में ब्राह्मणों की प्रतिष्ठा थी। वे लोगों के पूजनीय थे क्योंकि शिक्षा तथा धर्म सम्बन्धित सभी अधिकार उनके पास थे। जनता उनको गुरु समझती थी।⁴ जैसे की लटकमेलक नाटक ने लोग सभासलि नामक ब्राह्मण को गुरु कह कर पुकारते थे। लोग ब्राह्मण की चरण वन्दना करते थे।⁵ जैसे कि नलविलास नामक नाटक में ब्राह्मण के प्रवेश के साथ लोग उनका चरण स्पर्श करते थे। शिक्षा ब्राह्मण को शोभा देती थी।

शोभन्ते विद्यया विप्राः।⁶

मार्कोपोलो का कथन है कि ब्राह्मण उत्तम व्यापारी और सत्यवादी हैं। वे मद्य मांस का उपयोग नहीं करते और संयमी जीवन व्यतीत करते हैं। ब्राह्मणों के चरित्र विशुद्ध थे।

पठन्ति सूक्तानि सद्भसंस्तर प्रणीतहव्याशननव्यवेदयः।

अमी यथासूत्रहुतानमलस्त्रीयीविशुद्धाः प्रथमं द्विजन्मनाम्।⁷

अर्थात् कहने का अभिप्राय है कि जिन्होंने ङाभ के आसनों पर बैठकर नवीन वेदिकाओं में अग्नि को प्रज्वलित किया है, जिन्होंने शास्त्र के अनुसार, गार्हपत्य, दाक्षिणात्य और आहवहीन इन तीन अग्नियों में होम किया है तथा जो त्रयी-सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक चरित्र से विशुद्ध हैं। ऐसे श्रेष्ठ ब्राह्मण सुक्तियों-मगलमय वचनों का पाठ करा रहे हैं।

लेकिन कहीं-कहीं इसका अपवाद भी देखने को मिलता है जो इनके चरित्र हनन की ओर संकेत करता है। लटकमेलक प्रहसन में सभासली ब्राह्मण का चरित्र कुछ ऐसा ही दिखाया गया। वह अपनी पत्नी कलहप्रिया से नाराज होकर मंदनमंजरी नामक वेश्या के घर अक्सर जाया करता था। इसके अतिरिक्त ब्राह्मण सेविकाएं भी रखते थे। सत्यहरीशचन्द्र नाटक में विश्वामित्र ब्राह्मण पात्र के पास सेविकाओं का उल्लेख है। सम्भवतः धनिक ब्राह्मण ही सेविकाएं रखते थे। इस प्रकार स्वयं ब्राह्मणों ने अपनी प्रतिष्ठा खोना आरम्भ कर दिया था। ए.एल. श्रीवास्तव सल्लतनत युग कगे आरम्भ में मुस्लिम शासन का पहला गम्भीर प्रभाव ब्राह्मणों की स्थिति एवं उनके कार्यों पर मानते हैं। वे लिखते हैं कि "अब ब्राह्मण अपने विद्यानुराग से प्रयाप्त नहीं कमा पाते थे, इसलिए नवीन स्मृतियों में यह व्यवस्था कर दी गई कि वे श्रामिक लगाकर खेती बाड़ी कर सकते हैं। विशेष कठिनाईयों के सामने स्वयं भी हल जोड़ सकते हैं। इन परिवर्तन के कारण अब ब्राह्मण वैदिक अध्ययन एवं आध्यात्मिक एवं बौद्धिक कार्यों में उतना समय या ध्यान नहीं लगा पाते थे, जितना कि वे पहले लगाया करते थे।"⁸ स्मृतियों के इन नवीन भाष्यों में उन्हें उसकी अनुमति प्रदान कर दी गई कि वे अपने मूल व्यवसाय की तरफ कम ध्यान दे सकते थे। उन्हें अनुमति थी कि वे वेदों के उन्हीं भागों का अध्ययन कर सकते थे, जिनमें उन्हें रूची हो। कहीं-कहीं तो केवल पुराणों का अध्ययन ही काफी बताया गया है।⁹ इस प्रकार सल्लतनत काल के प्रारम्भ में ब्राह्मणों के घटते हुए महत्व और वेदाध्ययन के प्रति विमुखता को स्पष्ट रूप से

स्वीकार कर लिया गया। ब्राह्मणों की उपजातियां भी बन गई थीं। ब्राह्मण 700 ई. से 1000 ई. तक भिन्न शब्द जातियों में बंटे मालूम नहीं होते। 1050 ई. के चन्देलों के तामपात्रों में भारद्वाज गोत्र युजर्वेदीय शाखा के प्रियवर ब्राह्मणों का उल्लेख है। 1077 ई. के कलचुरी लेख में जो गोरखपुर जिले के कहन नामक स्थान से प्राप्त हुआ है। ब्राह्मणों के नाम के साथ-साथ शाखा गोत्रादि के अतिरिक्त उनके नाम के उल्लेख हैं।¹⁰ कोंकण के बारहवीं सदी के एक लेख में 32 ब्राह्मणों के नाम दिये हैं। बारहवीं शताब्दी में उपनामों का बहुत उपयोग होने लगा था। जिनमें कुछ दीक्षित उपाध्याय, महाउपाध्याय, ठाकुर अग्निहोत्री¹¹ आदि हैं। जब वह एक अग्नि की सेवा करता है तो इष्टि कहलाता है। जब वह तीन अग्निओं की सेवा करता है तो अग्निहोत्री कहलाता है। यदि वह इसके अतिरिक्त आग में नवैध (आहुतियां) भी देता है तो उसका नाम दीक्षित होता है।¹² यह जाति भेद क्रमशः बढ़ता गया। इसके अतिरिक्त ब्राह्मण का जीवन चार आश्रमों में विभक्त था। ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, सन्यास। ब्राह्मण के साथ युद्ध नहीं किया जाता था। उनको बलवानों को मूर्धन्य समझा जाता था।¹³ जैसे कि प्रसन्नराघव नाटक के चौथे अंक को पढ़ने से प्रतीत होता है। ब्राह्मण की प्रार्थना भंग नहीं की जाती थी।¹⁴ सामान्य क्षत्रियों में ब्राह्मणों का स्थान ऊँचा था केवल राजकार्य के क्षत्रिय ही ब्राह्मणों से उच्चे थे। कहने का अभिप्रायः है कि शासक वर्ग के क्षत्रिय अपना प्रभाव बढ़ाने लगे थे और वे ब्राह्मणों की अवहेलना करने लगे थे। जैसे कि प्रसन्नराघव नाटक में राम नाम का चरित्र जामदगन्य नामक ब्राह्मण को हीन बताकर उसकी अवहेलना करता है और अपनी जाति को श्रेष्ठ बताता है।¹⁵ ब्राह्मणों के बाद क्षत्रियों का स्थान था। क्षत्रियों का समाज में सम्मान होता था। इनकी पदवी भी ब्राह्मणों से बहुत कम नहीं थी।¹⁶ वह प्रजा पर शासन करता और उनकी रक्षा करता था। क्योंकि उनका जन्म इस हेतु हुआ था।¹⁷ लेकिन क्षत्रिय वर्ग के संगठन में बहुत कुछ परिवर्तन हो गया था। शक सीथियन हुण आदि जातियां इसमें शामिल हो गई थी। क्षत्रिय के स्थान पर राजपूत शब्द का प्रयोग होने लगा था। 8वीं से 12वीं शताब्दी तक भारत में राजपूतों की प्रधानता रही। इतिहास में यही युग राजपूत युग के नाम से जाना जाता है। क्षत्रियों का समाज में ऊँचा स्थान था और वे ब्राह्मणों की क्षमता में खड़े होने का दावा करते थे। उनका धर्म युद्ध करना और प्रजा तथा आचार्यों की रक्षा करना था। जैसे कि किरातार्जुनीय नाटक में अर्जुन को ब्राह्मणों को ब्राह्मणों और प्रजा की रक्षा करते हुए दिखाया गया। सम्भवतः यह इसी का प्रतीक है। उनके प्रताप का बहुत महत्व था।¹⁸ युद्ध करने से जो डर जाता था उसे अच्छा नहीं समझा जाता था।¹⁹ उदाहरण के लिए उल्लाघराघव में रावध को युद्ध न करने की सलाह मिलती है तो कहता है कि युद्ध न करना कायरता की निशानी है। उनका शरीर दूसरों के लिए समझा जाता था। उनकी प्रतिष्ठा विजय में थी।²⁰ उदाहरण के लिए किरातार्जुनीय में अर्जुन हरकिरात से कहता है कि विजय में मेरी प्रतिष्ठा है। युद्ध में चले जाने पर उनकी पत्नियां विजय की कामना करती थी तथा अपने पति के मर जाने पर सती भी हो जाती थी।²¹ जैसे कि नलविलास नाटक में दम्पन्ति नल की मृत्यु की खबर सुनकर सती होने को तैयार हो जाती है। किन्तु क्षत्रियों ने ब्राह्मणों के कार्यों को भी अपना लिया था। ये शासन करते समय उदार तथा न्याय करते समय गम्भीर होते थे।²² उदाहरण के लिए विक्रान्त कौरव नाटक में नवमालिका सुलोचना को एक क्षत्रिय की विशेषता बताते हुए कहती है। क्षत्रिय लोग दान देते थे, ग्रहण नहीं करते थे। जो भी याचक जनदानार्थ आता था वह खाली नहीं जाता था।²³ जैसे कि सत्यहरिश्चन्द्र नाटक के दूसरे अंक में हरिश्चन्द्र

नामक क्षत्रिय के चरित्र को दिया गया है। लोग उनका उचित सम्मान करते थे। इस समय क्षत्रियों की विशेषता पर प्रकाश डालते हुए टॉड महोदय लिखते हैं।

‘अदम्य उत्साह, राजभक्ति, देश प्रेम, वैमनस्य आदि गुण इनमें विद्यमान थे किन्तु यहां एक बात ध्यान देने योग्य है कि सामान्य ब्राह्मणों और क्षत्रियों में ब्राह्मणों का स्थान ऊँचा था। केवल राज्यकाल के क्षत्रिय ही ब्राह्मणों से ऊँचे थे, ये भी कई जातियों में बंट गये थे’²⁴ प्रसन्नराघव नाटक में जामदगन्य नामक ब्राह्मण के साथ में क्षत्रिय के विवाद से स्पष्ट होता है क्षत्रिय अपना प्रभाव बढ़ाने लगे थे, जैसे कि प्रसन्नराघव में एक क्षत्रिय पात्र जागदम्य ब्राह्मण को हीन बताकर उसकी अवहेलना करता है और अपनी जाति को श्रेष्ठ बताता है।²⁵

ब्राह्मण और क्षत्रियों के बाद वैश्यों का स्थान आता था। वैश्य का कर्म खेती-बाड़ी करना पशुधन को प्राप्त करना और व्यापार करना था।²⁶ वैश्यों के बारे में आर.सी. दत्त लिखते हैं ‘9वीं एवं 10वीं सदी तक राजनैतिक, धार्मिक परिवर्तन के समय भी वैश्य को ब्राह्मण के समान वेद अध्ययन और यज्ञ आदि करने का पूर्ण अधिकार इस समय तक प्राप्त न था और अब भी उन्हें धार्मिक मामलों में अयोग्य समझा जाता था।’²⁷ अलबेरुनी के विवरण से भी प्रकट होता है कि उनके लिए वेदों को सुनना वर्जित था। हबीबुल्लाह ने सल्तनत काल के आरम्भ में वैश्यों के विशिष्ट व्यवसायों के बारे में प्रकाश डालते हुए लिखा है कि वैश्यों का मुद्रा के लेन-देन का धन्या पूर्णतः हिन्दुओं तक सीमित था। हिन्दुओं की बढ़ती ब्याज दर का राजकीय शक्ति को आश्रय प्राप्त था। इसके बलबूते वैश्यों ने सामन्तों को गरीब बना दिया था।²⁸

वैश्यों के बाद शूद्रों का स्थान आता था। अलबेरुनी के अनुसार ‘शूद्रों का कर्तव्य अपने से उच्च वर्ग की सेवा करना था जिससे वे उसे पसंद कर सकें।’²⁹ उन्हें सबसे तुच्छ समझा जाता था। इस समय का नाट्य साहित्य भी शूद्रों की स्थिति को अच्छा नहीं दिखता। शूद्रों की भी कई उपजातियां बन गई थीं, जैसे – भाण्ड, कहार, धोबी आदि।³⁰ शूद्र तथा असमान जाति के स्पर्श को दूषित समझा जाता था जैसे कि इस श्लोक से प्रतीत होता है –

अरे, रे भिक्षुक, दूर गच्छ। असदृशजाति स्पर्श दूषितोऽसि।³¹

इस श्लोक में दिग्म्बर नाम का जैन विद्वान व्यसनाकार जो कि एक बौद्ध भिक्षु है उसको कह रहा है कि तु यहां से दूर हो जा क्योंकि तू असमान जाति के स्पर्श से दूषित है। यहां तक कि शूद्र को देखना भी अच्छा नहीं समझा जाता था।

चतुर्थवर्णस्थ पुरतः स्थातुनुचितमस्माकम्।³²

प्रयुक्त श्लोक को प्रसन्नराघव नाटक में स्वयं सुत्रधार कहता है कि कोई शूद्र आ रहा है यहां हम लोगों का रहना अनुचित है।

निम्न जातियां भी पहले की तरह बनी हुई थी। इनकी एक विस्तृत संख्या मौजूद थी जो शूद्रों से भी घटिया दर्जे के माने जाते थे। इनकी गिनती किसी भी वर्ण में नहीं होती थी। परन्तु इन्हें विशेष व्यवसायी तथा शिल्पी समझा जाता था। अलबेरुनी ने इनकी संख्या आठ बताई है वे हैं – धुनिए, मोची, मदारी, टोकरी तथा ढाल बनाने वाले, मांझी (नाविक) मछली पकड़ने वाले, अहेरिये और जुलाहे। ये लोग चार वर्णों के पास मगर बाहर रहते थे।³³ इन जातियों के अन्तर्गत चाण्डाल पिशाच, निषाद आदि भी जातियां थी जिसकी पुष्टि तात्कालिक नाटकों से होती है। चाण्डाल का काम आधी जली चिताओं से लकड़ी खींच निकालना, शव से कफन लेना तथा

शमशान की रक्षा करना था।³⁴ जैसा कि हमें सत्यहरिश्चन्द्र नाटक से पता चलता है। यानि कि गांव के नीच काम इनको सौंपे जाते थे। इस बात की पुष्टि अलबेरुनी की कृति से भी होती है। शबरकिरात भी एक जाति थी जो वनों से मांस खोजते रहते थे। मांस ही उनके जीवन का एकमात्र आश्रय था। इसका विवरण हमें किरातार्जुनीय व्ययोगः नामक नाटक से प्राप्त होता है।

मांस मुहर्वन महीषु गवेष्यन्ति।
तज्जीवनैकशरणाः शधराः फिरताः।³⁵

वे क्षत्रियों के मार्ग को अपनाना चाहते थे मगर ये मार्ग उनके योग्य नहीं था।³⁶

इनके अतिरिक्त चारणों तथा किन्नरों ने भी जाति का रूप धारण कर लिया था। किन्नरों का कार्य आज के युग की भांति ही खुशी के अवसर पर बधाई प्राप्त करना था लेकिन समाज में इनको अच्छी दृष्टि से नहीं देखा जाता था।³⁷ चारण जाति का कार्य गाना बजाना, स्तुतिपाठ द्वारा वीरसमूह का अभिवादन करना था। इस जाति का तो सम्मान भी था।³⁸

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि प्राचीनकाल से ही चली आ रही वर्णव्यवस्था चल रही थी लेकिन उसमें परिवर्तन लगे थे। जातियों के अन्दर उपजातियां बन गई थी। ब्राह्मणों का चारित्रिक पतन होने लगा था। वो अपने लिए सेविकाएं भी रखने लगे थे। मुसलमानों के आने के बाद क्षत्रिय का महत्व कम होने लगा था तथा उन पर ब्राह्मणों का ज्यादा प्रभाव था। मुद्राओं के लेन-देन के कारण वैश्यों का महत्व बढ़ गया था। सामन्त वैश्यों की सहायता लेने लगे थे। नाट्य साहित्य के अनुसार शुद्रों की दशा पहले से भी खराब होती जा रही थी। अतः इस समय के नाटकों में जाति व्यवस्था पर विस्तृत रूप से प्रकाश डाला गया है।

संदर्भ

1. अलबेरुनी वर्णित भारत, पृ. 62, अनुवादक संतराम बी.ए., पब्लिकेशन स्कीम, 57, मिश्र जी का रास्ता, जयपुर-302001, 1994
2. थापर रोमिला, प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पृ. 110, श्यामबिहारी राय ग्रंथ शिल्पी (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड, जी-28, दिल्ली, 1992
3. ए.बी. पाण्डे, पूर्व मध्यकालीन भारत, पृ. 392, सैन्ट्रल बुक डिपो, इलाहाबाद, 1988
4. लटकमेलक, पृ. 15
5. नलविलास, पृ. 5, रामचन्द्र सूरी कृत सं. जी.के. श्री गोंदकर, सैन्टरल लाइब्रेरी, लाल चन्द्र बी. गांधी, बड़ौदा, 1926
6. धनंजय विजय, पृ. 15, कांचनाचार्य कृत सं. गायकवाड ओरियन्ट सीरीज, 58, 1917
7. विक्रान्तकौरव, पृ. 266
8. ए.एल. श्रीवास्तव, दिल्ली सल्लनत, पृ. 57
9. वही, पृ. 57
10. राजकुमार शर्मा, कलचुरी राजवंश और उनका युग, खण्ड-2, पृ. 225-26, आर्यन बुक्स इन्टरनेशनल, 4378/4वीं, पूजा अर्पाटमैन्ट्स 4, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली, 1998
11. लटकमेलक, पृ. 44
12. अलबेरुनी वर्णित भारत, भाग-1, पृ. 63

13. ययातिचरित, पृ. 7, रूद्रदेव या रूद्रचन्द्रदेव कृत सं. सी.आर. देवघर, भण्डारकर ओरियन्टल रीसर्च इंस्टिट्यूट, पूना, 1965
14. अलबेरुनी वर्णित भारत
15. प्रसन्नराघव, पृ. 244
16. वही, पृ. 62
17. वही, पृ. 146
18. किरातार्जुनीय, पृ. 57-58
19. उल्लाघराघव, पृ. 68, सोमेश्वर कृत ओरियन्टल इन्सीट्यूट, बड़ौदा, 1961
20. किरातार्जुनीय, पृ. 63-63
21. नलविलास, पृ. 82
22. विक्रान्तकौरव, पृ. 66
23. सत्यहरिश्चन्द्र, पृ. 20 एवं 49
24. कर्नल टॉड, राजस्थान का इतिहास, अनुवादक केशव ठाकुर, प्रथम भाग, पृ. 358, चौड़ा रास्ता, जयपुर, 2003
25. प्रसन्नराघव, पृ. 243-244
26. अलबेरुनी-वर्णित भारत, भाग-1, पृ. 64
27. के.ए. निजामी, रीलिजन एण्ड पालटिक्स इन इण्डिया, पृ. 69
28. हबीबुल्लाह, फाउण्डेशन ऑफ मुस्लिम रूल इन इण्डिया, पृ. 297, इलाहाबाद, 1961
29. अलबेरुनी-वर्णित भारत, भाग-1, पृ. 64
30. लटकमेलक, पृ. 4-5
31. वही, पृ. 44
32. प्रसन्नराघव, पृ. 38
33. अलबेरुनी-वर्णित भारत, भाग-1, पृ. 63
34. सत्यहरिश्चन्द्र, पृ. 32
35. किरातार्जुनीय व्ययोग, पृ. 53
36. वही, पृ. 60
37. सुभद्रा, पृ. 10
38. प्रसन्नराघव, पृ. 74